Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
Vol. 2, No. 4, March – April 2025

चिपको आंदोलन: एक समीक्षा

डॉ. विजय बहुगुणा
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,वीर शहीद केसरी चंद राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाकपत्थर (विकासनगर) देहरादून, उत्तराखंड

डॉ. राकेश लाल शाह
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी. देहरादून

डॉ. आशाराम बिजल्वाण
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय मोरी, उत्तरकाशी

सारांश

चिपको आंदोलन १९७० के दशक का एक महत्वपूर्ण सामाजिक पर्यावरणीय आंदोलन था,जिसने न केवल भारत में वनों के संरक्षण की दिशा को बदला बल्कि वैश्विक स्तर पर ग्रासरुट एनवीरोटिलिस्म की मिसाल भी पेश की,यह आंदोलन उत्तराखंड के चमोली और टिहरी जिलों में स्थानीय समुदायों विशेषकर महिलाओं द्वारा संचालित हुआ.इसका प्रमुख स्वरुप था -पेड़ों से चिपककर वनों को ठेकेदारों से बचाना।दरअसल १९६० -७० के दशक में हिमालयी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर व्यावसायिक लकड़ी कटान,सड़क निर्माण और खनन ने पर्यावरणीय असंतुलन पैदा किया।स्थानीय लोग ईंधन,चारा ,जल श्रोत और कृषि उत्पादन के लिए जंगलों पर निर्भर थे -सीधे प्रभावित हुए। १९७३ में रेणी गाँव (चमोली जनपद) गौरा देवी और ग्रामीण महिलाओं द्वारा आरम्भ किया गया, प्रतिरोध चिपको आंदोलन का प्रतीक बन गया।हिमालयी क्षेत्रों में वन सम्पदा का तेज़ी से शोषण बढ़ा.सड़कनिर्माण ,खनन और व्यावसायिक लकड़ी कटान ने पर्यावरणीय संकट पैदा किये।मसलन -भूस्खलन,जलश्रोतों का सूखना,पशुचारे की कमी,तथा खेती पर प्रतिकूल प्रभाव आदि का गतिविधियों से सम्बंधित वनों पर प्रत्यक्ष निर्भरता रखने वाले ग्रामीणों ने इसे अपनी आजीविका लिए संकट के रूप में देखा -इसी सन्दर्भ में चिपको जैसी चेतना विकसित हुई।

चिपको आंदोलन उत्तराखंड चमोली जिले गाँवों -विशेषकर रेनी जैसे गाँवों में फैलने वाले वनों के विरुद्ध स्थानीय लोगों (खास्कट महिलाओं)का सक्रिय प्रतिरोध था.लोगों ने पेड़ों से चिपककर वृक्ष काटने को रोका -इसी वजह से आंदोलन का नाम चिपको पड़ा, इस आंदोलन ने न सिर्फ स्थानीय कटाई रोकी बल्कि जंगलों के सामुदायिक प्रबंधन और वन नीतियों पर लंबा प्रभाव डाला। टोपोग्राफी यानी पहाड़ी /विकृत भू आकृति का तीन बड़े तरीके से पेड़ों के संरक्षण में अहम् भूमिका निभायी -ढलान और मृदा नुकसान ;हिमालयी ढलानों पर पेड़ों की जड़ें मिटटी बांधकर रखती हैं। पेड़ों की कटाई से ढलान अस्थिर हो जाते हैं -खासकर मानसून में और बड़े पैमाने पर मृदा अपरदन,भू धंसाव और लैंड स्लाइड होते हैं ,रेनी जैसे गाँवों में खेत,रास्ते और मकान नीचे बहने की आशंका बढ़ जाती थी.

जल विज्ञान /जलस्रोत के अनुशीलन करने पर जान पड़ता है कि पहाड़ियों के जंगल पानी को धीमा कर के धरती में सोखने और स्थिर नद नालों को बनाये रखने में सहायक होते हैं ,पेड़ों के कटान से पानी तेज़ी से बहता है -इससे निचले इलाकों में बाढ़ और ऊपर की ओर पानी की कमी दोनों होते हैं.स्थानीय तालाब,कुंवे और चश्मे सूखने लगते हैं ,सूखे और बेमौसम प्रवाह से खेती प्रभावित होती है।खड़ी चट्टान व नाज़ुक ढलानों पर बड़े ट्रकों और मशीनों से कटाई करने के लिए एक्सेस बनायी जाती है-जो और भी ज्यादा कटाई और रास्तों का व्यापक नुक्सान लाती है.कठिन टोपोग्राफी के कारण स्थानीय लोगों के लिए जंगलों का दैनिक उपयोग (ईंधन,चारा)सीधे जुड़ा हुआ था -इसलिए कटाई का असर सीधे उनकी जीवन रेखा पर पड़ता है।सामाजिक आर्थिक सन्दर्भ में महिलाओं की भूमिका अग्रणी रही है ,पहाड़ी समुदायों में घर की ईंधन,पानी,चारा इत्यादि जुटाने का बोझ ज्यादातर महिलाएं उठाती थीं ,पेड़ों की कटाई से उनका समय और मेहनत बढ़ती थी -इसलिए महिलाओं ने नेतृत्व किया। जल और मिटटी की गिरावट से खेती प्रभावित हुई ,पशपालकों को चारा काम मिला -आर्थिक असुरक्षा बढ़ी। अक्सर बाहरी लकड़ी के ठेकेदार आते और तेज़ी से काटते -पहाड़ी नाजुकता का ध्यान न रखते हुए। टोपोग्राफी के कारण नुक्सान बड़ा और ज्यादातर स्थायी था।ढलान के हिसाब से जैविक बंध ,ग्रैविटी पिट्स और स्थानीय जाति के पौधे लगाना सुदीर्घ परम्परा रही है.स्थानीय ग्राम समितियां ,महिलाओं की भागेदारी और स्थानिक नियम बनाये जाने चाहिए ताकि कटाई नियंत्रित रहे। ढलान पर चरणबद्ध खेती,ग्रेडेड बैंकों और कवर क्रॉप्स लगाने की जरुरत है. चिपको आंदोलन का वस्तुगत आधार यह था कि चमोली जिले में शीघ्र उभार में १९७० की अलकनंदा बाढ़ ने निर्णायक योगदान दिया और वहां के कार्यकर्ताओं के सामाजिक कर्म के मिज़ाज़ को बदलने में भी ,हिमालय की नदियों में बाढ़ों का सिलसिला नया नहीं था लेकिन जुलाई १९७० की जैसी बाढ़ बीसवीं शताब्दी में कभी नहीं आयी थी (पाठक 2019 :156)

प्रख्यात इतिहास शेखर पाठक ने चमोली जनपद में अलकनंदा और सहायक नदियों में भूस्खलन और बाढ़ के सिलसिले के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि १८५७ में एक भूस्खलन के कारण नंदाकिनी नदी ३ दिन तक रुकी रही ,और फिर इस झील के टूटने से अलकनन्दा में बाढ़ आयी थी। १८६८ में गुडियार ताल में भूस्खलन आने से निकला पानी भी बाढ़ का कारण बना ,जिससे पूल,खेत मकान ही नहीं चमोली के ७३ वयक्ति भी बह गए। सितम्बर १८९३ में गोना गाँव के पास बिरही नदी को एक विशाल भूस्खलन ने रोककर एक ताल बना दिया १८९४ को इसका बड़ा हिस्सा टूटने से नीचे बिरही और अलकनंदा -गंगा घाटी में हानि हुई,इसी समय श्रीनगर का बड़ा हिस्सा बह गया था (पाठक,२०१९ :१५६) उपर्युक्त परिस्थितियों को लोगों ने महसूस किया था कि पेड़ों के संरक्षण के प्रति उदासीनता उचित नहीं है।

प्रसिद्द पर्यावरणविद श्री सुन्दर लाल बहुगुणा जी ने चिपको आंदोलन पर मत व्यक्त करते हुए कहा कि "चौदह वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में वृक्षों की रक्षा के चिप्लो आंदोलन के रूप में यह भावना प्रकट हुई है ,यह आंदोलन प्रारम्भ में एक आर्थिक आंदोलन के रूप में जन्मा,लेकिन संस्कृति की पहरेदार महिलाओं ने कहा 'जंगल तो हमारा मायका है 'जो बातें वेदांती संत अपने उपदेशों में कहते थे -मानव और प्रकृति के जीवंत रिश्ते की ,वे अनपढ़ ग्रामीण महिलाओं के हृदय से फूटे हुए गीतों में सुनाई दी। भोगवादी सभ्यता का सूत्र था -क्या हैं जंगल के उपकार?लीसा ,लकड़ी और व्यापार। उद्योग व्यापार और लकड़ी के लिए पेड़ काटने वालों को चुनौती देते हुए इन महिलाओं ने जिस मन्त्र का घोष किया ा,वह ज़िंदा रहने के लिए संघर्षरत प्राणी का जीवन मन्त्र बन गया -

"क्या हैं जंगल के उपकार ?मिटटी ,पानी और बयार

मिटटी पानी और बयार ,ज़िंदा रहने की आधार '(बहुगुणा,2025 :178)

पर्यावरण संरक्षण पर आधारित कविता *'ई बांज ,बुरांश , कुळें की डाली, न काटा नकाटा यूं रखा जग्वाली*

पतियों मां छ दूध,जड्यों मां छ पाणी

सूरसूर्यां बथों छ बरखा बत्वानि।

गंगा जमुना का ई छन सिराण'

पशु मन्ख्यों का ई मनः पराण' प्रासंगिक हैं

भूस्खलनों और बाढ़ ने हिमालय की भूगर्भिक नाजुकता को उजागर किया और जंगलों ले कटान से इसके रिश्ते की पड़ताल भी हु(पाठक २०१९ :१५७). इस चैप्टर का मकसद चिपको (जंगल बचाने) मूवमेंट (1973–1981) में एक्टिविस्ट्स की पहल पर फोकस करके, नॉर्थ इंडिया के उत्तराखंड में लोकल पब्लिक एरिया के उभरने के इतिहास के शुरुआती दौर को सामने लाना है। हालांकि चिपको मूवमेंट 1980 के दशक में 'गरीबों के एनवायरनमेंटलिज़्म' के उदाहरण के तौर पर मशहूर हुआ, लेकिन 1990 के दशक के बाद इसकी आलोचना होने लगी, क्योंकि कुछ जानकारों के मुताबिक, यह मूवमेंट फेल हो गया, क्योंकि लोकल लोगों की जंगल के रिसोर्स का इस्तेमाल करके लोकल इकॉनमी को डेवलप करने की सच्ची इच्छा को कमर्शियल लॉगिंग पर पूरी तरह बैन लगाकर खत्म कर दिया गया। इसके अलावा, दूसरे जानकारों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कमर्शियल डिफॉरेस्टेशन पर रोक चिपको मूवमेंट का नतीजा नहीं था, बल्कि सेंटर में एग्रीकल्चर मिनिस्ट्री पर एनवायरनमेंट डिपार्टमेंट की जीत का नतीजा था। पिछली स्टडीज़ के मुकाबले, यह चैप्टर यह तर्क देता है कि चिपको आंदोलन ने फॉरेस्ट मैनेजमेंट सिस्टम को बदलने में भूमिका निभाई, और यह कहना गलत होगा कि यह बदलाव लोकल लोगों के लिए फायदेमंद नहीं था। इसके अलावा, यह आंदोलन सोशल

एक्टिविस्ट्स के एक नए नेटवर्क के बनने के लिए भी ज़रूरी था।चिपको आंदोलन 'गरीबों का पर्यावरणवाद' के तौर पर?चिपको आंदोलन अप्रैल 1973 में मंडल गांव में शुरू हुआ था।

उत्तराखंड के बाहर से आने वाले लकड़ी के कॉन्ट्रैक्टर्स द्वारा कमर्शियल डिफॉरेस्टेशन का विरोध करने के लिए, गांव के लोगों, जिनमें कई महिलाएं भी शामिल थीं, ने पहली बार पेड़ों को गले लगाने का तरीका अपनाया। हर साल एक लोकल एसोसिएशन को दिया जाने वाला लकड़ी का कोटा उस साल मंज़ूर नहीं किया गया। इसके बजाय, इलाहाबाद में एक स्पोर्ट्स गुड्स बनाने वाली कंपनी ने मंडल के जंगल में पेड़ों का इस्तेमाल करने का लाइसेंस ले लिया। इस बात का विरोध करने के लिए हुई टाउन मीटिंग में, हिस्सा लेने वालों ने चंडी प्रसाद भट्ट के उस प्रस्ताव को मंज़ूरी दे दी जिसमें उन पेड़ों को 'गले लगाने' का तरीका इस्तेमाल करने का प्रस्ताव था जिन्हें काटा जाना था। जब लकड़ी के कॉन्ट्रैक्टर का स्टाफ़ मंडल के जंगल में घुसा, तो वहाँ के लोग सबसे आगे खड़े हो गए और बिना हिंसा के जंगल की रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाल दी, जिससे पेड़ों की कटाई रुक गई। इस विरोध के बाद, कॉन्ट्रैक्टर कई बार लौटे, लेकिन पेड़ नहीं काट सके। चिपको (जंगल बचाने) आंदोलन (1973–1981) हालांकि 1980 के दशक में 'गरीबों के पर्यावरणवाद' के उदाहरण के तौर पर मशहूर हुआ, लेकिन 1990 के दशक के बाद इसकी आलोचना होने लगी, क्योंकि कुछ जानकारों के मुताबिक, यह आंदोलन नाकाम रहा, क्योंकि स्थानीय लोगों की जंगल के संसाधनों का इस्तेमाल करके स्थानीय अर्थव्यवस्था को विकसित करने की सच्ची इच्छा को आंदोलन की कमर्शियल कटाई पर पूरी तरह से रोक लगाकर खत्म कर दिया गया। इसके अलावा, दूसरे जानकारों ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि कमर्शियल वनों की कटाई पर रोक चिपको आंदोलन का नतीजा नहीं थी, बल्कि केंद्र में कृषि मंत्रालय पर पर्यावरण विभाग की जीत का नतीजा थी। इन पिछली अध्ययन के मुकाबले, यह तर्क देता है कि चिपको आंदोलन ने जंगल मैनेजमेंट सिस्टम को बदलने में भूमिका निभाई, और यह कहना गलत होगा कि यह बदलाव स्थानीय लोगों के लिए फायदेमंद नहीं था। इसके अलावा, यह आंदोलन सोशल एक्टिविस्ट्स के एक नए नेटवर्क के बनने के लिए भी अहम था। क्या चिपको आंदोलन 'गरीबों का पर्यावरणवाद' था?चिपको आंदोलन अप्रैल 1973 में मंडल गांव में शुरू हुआ था।

उत्तराखंड के बाहर से आने वाले लकड़ी के ठेकेदारों द्वारा पेड़ों की कमर्शियल कटाई का विरोध करने के लिए, गांव के लोगों ने, जिनमें कई महिलाएं भी शामिल थीं, पहली बार पेड़ों से गले मिलने का तरीका अपनाया। हर साल एक लोकल एसोसिएशन को जो लकड़ी का कोटा दिया जाता था, उसे उस साल मंज़ूरी नहीं मिली। इसके बजाय, इलाहाबाद में एक स्पोर्ट्स का सामान बनाने वाली कंपनी ने मंडल के जंगल में पेड़ों का इस्तेमाल करने का लाइसेंस ले लिया। इस बात का विरोध करने के लिए हुई टाउन मीटिंग में, हिस्सा लेने वालों ने चंडी प्रसाद भट्ट के उन पेड़ों को 'गले लगने' के तरीके को मंज़ूरी दे दी जिन्हें काटा जाना था।

जब लकड़ी के ठेकेदार का स्टाफ मंडल के जंगल में घुसा, तो वहां के लोग सबसे आगे खड़े हो गए और बिना हिंसा के जंगल की रक्षा के लिए अपनी जान जोखिम में डाल दी, जिससे जंगलों की कटाई रुक गई.

चिपको आंदोलन पर हाल की स्टडीज़ में आंदोलन का नेगेटिव मूल्यांकन हुआ है, क्योंकि आंदोलन ने स्थानीय लोगों के जंगल के संसाधनों का इस्तेमाल करने का अधिकार और पेड़ों को काटने की उनकी 'असली' इच्छा को नकार दिया था। हालांकि, आंदोलन को सिर्फ़ 'फेल' मान लेना गलत होगा। हमें इसकी अहमियत को नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। सबसे पहले, उत्तराखंड में जंगल की पॉलिसी को लेकर लोगों की नाराज़गी का सबसे बड़ा कारण—यानी गैर-स्थानीय कंपनियों का जंगल के संसाधनों का दोहन—चिपको आंदोलन के बाद गायब हो गया। कंपनियों को इलाके से निकालना न सिर्फ़ केंद्र के नेताओं और ब्यूरोक्रेट्स की पहल से हुआ, बल्कि स्थानीय एक्टिविस्ट्स की भी कोशिशों से हुआ, जैसा कि हमने देखा है। यह चिपको आंदोलन की मुख्य कामयाबियों में से एक थी। यह सच है कि कमर्शियल कटाई पर रोक लगने के कारण स्थानीय जंगल से जुड़ी इंडस्ट्रीज़ पर आधारित क्षेत्रीय विकास का मौका खत्म हो गया, क्योंकि स्थानीय जंगल कोऑपरेटिव्स को भी निकाल दिया गया था। लेकिन, इस 'नुकसान' के लिए आंदोलन पर आरोप लगाना गलत होगा। 1980 के दशक की शुरुआत में केंद्र में पर्यावरण विभाग की तरफ से नेताओं और अधिकारियों का पक्का इरादा था कि प्राइवेट कंपनियों को जंगल से जुड़े उद्योगों से हटाया जाए(Ishizaka 2025) चिपको आंदोलन मूलतः महिलाओं द्वारा चलाया गया एक सामाजिक पर्यावरणीय आंदोलन था ,जिसने दुनिया को यह दिखाया कि ग्रामीण महिलाएं पर्यावरण संरक्षण की सबसे मजबूत प्रहरी होती हैं. रेणी गाँव की गौरा देवी(चिपको आंदोलन ,1974) और राजस्थान की अमृता देवी बिश्नोई (खेजड़ली बलिदान ,1730)दोनों भारतीय पर्यावरण इतिहास की ऐसी महिलाएं है ,जिन्होंने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए अपने जीवन को दांव पर लगा दिया। इनका योगदान केवल स्थानीय नहीं बल्कि वैश्विक पर्यावरण न्याय की मिसाल है ,दोनों की घटनाएं भले अलग स्थान और समय की हों लेकिन दोनों का एक सन्देश एक ही है -प्रकृति बचाओ -जीवन बचेगा। खेजड़ली ,राजस्स्थान -१७३० के घटनाक्रमानुसार जोधपुर की महाराजा ने लकड़ी के लिए खेजड़ी वृक्षों को काटने का फरमान जारी कर दिया गया था लेकिन अमृता वेवी बिश्नोई ने अधिकारियों के सामने वृक्षों को गले लगाकर कहा कि ''सर कि सांचे रूंख रहे तो भी सस्तो जाण'(सिर कट जाए ,पर वृक्ष बच जाय -यह सौदा भी सस्ता है),उनके साथ ३६३ बिश्नोई पुरुष महिलाओं ने पेड़ के लिए अपने प्राण बलिदान कर दिए।यह भारतीय इतिहास का सबसे पहला संगठित पर्यावरणीय आंदोलन था,बिश्नोई समुदाय का दर्शन था कि प्रकृति और जीवों की रक्षा ही धर्म है -इस बलिदान का आधार था,बलिदान आस्था ,संस्कृति और पहचान का हिस्सा था. गौरा देवी ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में अविस्मरणीय योगदान दिया जिसे भुलाया नहीं जा सकता ,घटनाक्रम यह था कि ठेकेदारों ने रेणी गाँव जे जंगलों को काटने की कोशिश की थी ,गाँव के पुरुष बाहर थे ,तब गौरा देवी के नेतृत्व में २७ महिलाओं

ने पेड़ों से चिपककर उन्हें काटने से रोका ,उन्होंने निडर होकर कहा कि यह जंगल हमारी मां है -पहले हमें काटो। यह घटना बताती है कि पहाड़ी महिलाओं का जीवन सीधे जंगलों से जुड़ा था -पानी ,चारा ,लकड़ी ,मिटटी आदि। उनका आंदोलन अहिंसक प्रतिरोध ,समुदाय की एकजुटता और मातृसत्तात्मक पारिस्थितिकी की मिसाल है। भारतीय जनजातीय और ग्रामीण महिलाएं प्रकृति संरक्षण की अग्रदूत रही हैं -वे अपनी भूमि जंगल और जल के लिए किसी भी हद तक जा सकती हैं। गौरा देवी और अमृता देवी बिश्नोई के सन्दर्भों को देखें तो पाएंगे कि उनके कार्यों ने इको फेमिनिज़्म की भारतीय जड़ों को मजबूत किया। देशी रियासतों के अंदर भीषण वन आंदोलन प्रस्फुटित हुए हैं ,टिहरी रियासत का तिलाड़ी काण्ड और राजस्थान का खेजड़ली आंदोलन कहीं न कहीं वनों के प्रति संरक्षण की भावना थी।

१९७० के दशक में भारत और विश्व -दोनों स्तरों पर पर्यावरणीय आंदलनों का स्वर्ण दशक कहा जा सकता है ,इस समय कई बड़े जन आंदोलन उभरे जिनका असर आज की पर्यावरणीय निति और जागरूकता तक पहुंचा ,चिपको आंदोलन का केंद्र चमोली जनपद का रेणी गाँव था ,जिनमें गौरा देवी ,चंडी प्रसाद भट्ट ,कामरेड गोविन्द सिंह रावत ,सुन्दर लाल बहुगुणा आदि समर्पित कार्यकर्ता थे.साइलेंट वैली आंदोलन १९७८ -८० में केरल राज्य में प्रस्फुटित हुआ ,उद्देश्य था कि साइलेंट वैली के उष्णकटिबंधीय वर्षावनों को बाँध निर्माण से बचाना रहा ,परिणामतः १९८३ में साइलेंट वेळी को राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया। वैज्ञानिकों ,शिक्षकों और स्थानीय लोगों ने बाँध के निर्माण के खिलाफ मोर्चाबंदी की। अप्पिको आंदोलन १९७९ में कर्नाटक रजुआ में प्रस्फुटित हुआ ,चिपको का दक्षिण भारतीय संस्करण था ,उद्देश्य था कि पश्चिमी घाट के वनों को बचाना था ,रणनीति थी कि किसे -कड़े -कडु अर्थात पेड़ों को गले लगाओ। १९७३ -७४ में बंगाल टाइगर संरक्षण आंदोलन प्रोजेक्ट टाइगर था जिसका ध्येय था कि बाघों का संरक्षण किया जाय। वैश्विक स्तर पर द ग्रीन मूवमेंट १९७० -७९ में चरम में था ,१९७० में पहला अर्थ डे मनाया जाने लगा ग्लोबल पर्यावरणीय चेतना का उदय हुआ। नेतरहाट विरोध आंदोलन झारखंड में प्रस्फुटित हुआ १९७० में इसका ध्येय थी कि सेना की फायरिंग रेंज से आदिवासी जंगलों की रक्षा ,जन जातीय नेतृत्व का प्रमुख आंदोलन था। बांडा और दोगरिया कोंध जनजाति आंदोलन १९७० मेंओड़ीशा में प्रस्फुटित हुआ जिसमें उद्देश्य था कि खनन परियोजनाओं से जैवविविधता और जनजातीय समाज की रक्षा हो। विश्व स्तर पर परमाणु परिक्षण विरोध आंदोलन के तहत अमेरिका -सोवियत हथियारों के विरोध में अलख जगाई गयी ,पर्यावरणीय क्षति और मानव जीवन की सुरक्षा से जुड़े। १९७० में प्रदुषण नियंत्रण व स्वच्छता आंदोलन दिल्ली ,मुंबई और कोलकत्ता में बड़े पैमाने पर जागरूकता आंदोलन चलाया गया ,नदी प्रदुषण ,औद्योगिक धुंवे ,शहरी कचरे के खिलाफ स्थानीय गतिविधियां गतिनमान थी।

प्रमुख लेखक वन्दना शिवा ने चिपको आंदोलन पर व्यक्त करते हुए कहा कि चिपको आंदोलन वन संरक्षण आंदोलन नहीं था बल्कि इसे महिलाओं की पारिस्थितिक चेतना

,परम्परागत ज्ञान और जीवन संघर्ष का प्रतिका बताया है (शिवा 1988). शिवा ने कहा कि प्रकृति के साथ महिलाओं का सम्बन्ध सिर्फ संसाधन का नहीं बल्कि जीवन और अस्तित्व का है।रेणी गाँव की महिलाएं प्रकृति की सच्ची संरक्षक थीं ,जिन्होंने विकास के मुनाफे से ऊपर जीवन की रक्षा रखी (शिवा १९८८)वन्दना शिवा ने तीन केंद्रीय तर्क दिए 1)पारिस्थितिकी का ज्ञान महिलाओं के पास अधिक जीवंत रूप में है,यह नारी और प्रकृति के सह अस्तित्व पर आधारित है 2) चिपको पर्यावरण बनाम पूँजी का संघर्ष नहीं -जीवन बनाम विनाश का संघर्ष था 3)महिलाओं का प्रतिरोध आधुनिक विकास मॉडल की आलोचना है -जो प्रकृति और समुदाय को नष्ट कर लाभ केंद्रित रास्ता अपनाता है। चिपको आंदोलन स्त्री चेतना ,पारम्परिक ज्ञान ,जैव विविधता ,समुदाय आधारित संसाधन प्रबंधन का द्योतक हैवंदना शिवा ने दलील दी है कि पितृसत्तात्मक विकास मॉडल कड़ी आलोचना प्रस्तुत करती है और तर्क देती है कि यह मॉडल न केवल प्रकृति का विनाश कर रहा है बल्कि महिलाओं को हाशिये पर धकेल रहा है ,खासकर तीसरी दुनिया के ग्रामीण क्षेत्रों में :मालदेवेलोप्मेन्ट की अवधारणा वन्दना शिवा विकास के पश्चिमी विचार को मालडेवलपमेंट कहती है उनका तर्क है कि प्रकृति को एक जीवित प्रणाली के बजाय शोषण के लिए एक निष्क्रिय संसाधन मानता है,साथ ही साथ एक दूसरे से जुडी और आत्मनिर्भर प्रणालियों की अखण्डता का उल्लंनघन करता है ,जिससे शासन ,असमानता और अन्याय की प्रक्रिया शुरू होती है ,वह दुनिया को आत्म विनाश की ओर ले जा रहा है ,शिवा इस बात पर जोर देती हैं कि भारतीय और कई अन्य गैर पश्चिमी संस्कृतियों में,प्रकृति को एक स्त्री सिद्धांत के रूप में देखा जाता है -शक्ति ,सर्जना और पोषण की श्रोत। ग्रामीण भारतीय महिलाएं जो रोज़मर्रा के जीवन के लिए सीधे तौरपर प्रकृति वन ,जल ,बीज पर निर्भर करती हैं ,पारिस्थितिक विनाश के परिणामों को सबसे ज्यादा महसूस करती हैं ,चिपको आंदोलन जैसे अहिंसक पारिस्थितिक आंदलनों में ग्रामीण महिलाओं की सक्रिय भूमिका को उजागर करती हैं.

चिपको आंदोलन १९७३ -७४ उत्तराखंड (तत्कालीन उत्तर प्रदेश)के गढवाल हिमालय में उभरा एक जान आधारित पर्यावरणीय आंदोलन था ,जिसका मूल उद्देश्य वनों की अंधाधुंध कटाई को रोकने और स्थानीय समुदायों के जीवन आधार की रक्षा करना था। रेणी और लाता (चमोली)जैसे गाँवों में महिलाओं ने पेड़ों से चिपककर ठेकेदारों को रोका -यह अहिंसक प्रतिरोध की प्रतीकात्मक और प्रभावी रणनीति बनी.

चंडी प्रसाद भट्ट द्वारा स्थापित दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल चिपको आंदोलन की वैचारिक और संगठनात्मक रीढ़ रही है ,DGSM का लक्ष्य था -स्थानीय संसाधनों पर स्थानीय नियंत्रण ,ग्राम आधारित लघु उद्योग ,और स्वावलम्बन। वन उत्पादों पर समुदाय के अधिकार की मांग ने ही चिपको को जन्म दिया।डी जी एस एम् ने महिलाओं को संगठित किया ,वैकल्पिक ,आजीविका (हस्तशिल्प ,लघु उद्योग)पर जोर दिया और वन बचाओ -जीवन बचाओ को

व्यवहार में उतारा। चिपको की सोच आगे बढ़ाते हुए पाणी राखो आंदोलन ने जल श्रोत संरक्षण ,वर्षा जल संचयन ,धाराओं नौलाओं के पुनर्जीवन पर बल दिया। वनों और जल के अन्तर्सम्बन्ध को रेखांकित करते हुए इस आंदोलन ने स्थानीय सहभागिता से जल सुरक्षा का मॉडल तैयार किया.

मैती आंदोलन और बीज बचाओ आंदोलन दोनों ही चिपको की विरासत और प्रेरणा से गहरे जुड़े हुए हैं इन आंदलनों को चिपको आंदोलन का विस्तार माना जा सकता है क्योंकि ये सभी उत्तराखंड में पर्यावरण और सामुदायिक संसाधनों के संरक्षण पर केंद्रित हैं।मैती आंदोलन के संस्थापक श्री कल्याण सिंह रावत ने स्वयं कहा कि उन्हें इस आंदोलन की प्रेरणा चिपको आंदोलन से मिली ,उन्होंने देखा कि सरकारी वृक्षारोपण अभियान विफल हो रहे थे ,क्योंकि लोग भावनात्मक रूप से इससे जुड़े नहीं थे ,चिपको की प्रेरणा से ,उन्होंने विवाह समारोहों के दौरान दुल्हन के मायके की याद में एक पौधा लगाने की अनोखी परम्परा शुरू हुई। इस भावनात्मक जुड़ाव के कारण लगाए गए पौधों की देखभाल स्वयं समुदाय द्वारा की जाने लगी।

बीज बचाओं आंदोलन का मुख्य उद्देश्य था कि रासायनिक खेती के बजाय पारम्परिक कृषि पद्धतियों और स्थानीय बीजों के संरक्षण को बढ़ावा देना रहा है। वह आंदोलन चिपको आंदोलन के पारिस्थितिक और गांधीवादी मूल्यों को आगे बढ़ाता है ,चिपको ने वनों को काटने से रोकने की बात की थी जबकि बीज बचाओ आंदोलन वन आधारित आजीविका और कृषि विविधता की रक्षा पर ध्यान केंद्रित किया ,इस आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता धूम सिंह नेगी भी जुड़े रहे। चिपको की विचारधारा का ही एक कृषि केंद्रित विस्तार था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बहुगुणा,सुंदरलाल,2024,*पहाड़ों की पीड़ा -सुंदरलाल बहुगुणा पद्म विभूषण से सम्मानित* पर्यावरणविद ,(अनुवादक) मधु पाठक ,समय साक्ष्य,देहरादून
2. पाठक,शेखर ,2019,*हरी भरी उम्मीद:चिपको आंदोलन और अन्य जंगलात प्रतिरोधों की परम्परा* ,वाणी प्रकाशन -भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
3. जरधारी,विजय,१९८१ ,*दूसरे दर्जे के नागरिकों की लड़ाई*,होलिका ,जाजल टिहरी
4. डबराल,शिवप्रसाद,1964,*उत्तराखंड के भोटान्तिक*,वीरगाथा प्रकाशन दुगड्डा.
5. चे शेखर ,1974 *अब पेड़ नहीं हम काटेंगे* ,अमर उजाला दीपावली विशेषांक,बरेली।
6. पाठक,शेखर तथा गुहा,रामचंद्र *1989 स्थानीय इतिहास जन इतिहास या राष्ट्रीय इतिहास*,पहाड़ 4 ,नैनीताल.

7. भट्ट,चंडी प्रसाद,१९७७ ,प्रतिकार के अंकुर(उपन्यास)दशोली ग्राम स्वराज्य मंडल,गोपेश्वर
8. भट्ट,चंडी प्रसाद 1980 ,*पैंतोली के जंगल में बांज के पेड़ों का कटान रुका*,हिमालय निवासी तथा निसर्ग,अप्रैल
9. प्रसून कुंवर 1995 *बीजों की विरासत* ,जाजल (टिहरी)
10. प्रसून कुंवर १९७९ *क्या चिपको आंदोलन का होगा* ,रविवार २४ जून
11. बहुगुणा ,सुंदरलाल १९६६ *जंगलों की तबाही में हमारा सहयोग*,युगवाणी :१८ दिसंबर
12. विल्सन रोज़लीन ,1978 ,*फूलों की घाटी में चिपको आंदोलन*,नई दुनिया ,१ मार्च इंदौर

References

1. Bahuguna, S. (1979). *Chipko: A novel movement for establishment of cordial relationship between man and nature*. Silyara: Chipko Information Centre
2. Agrawal,Arun,2005,*Environmentality* ,Current Anthropology,Vol.46,No.2,April
3. Agrawal,D.P. and Kharkwal,J.S.,1998,Central Himalayas:An Archaeological,Linguistic and Cultural Synthesis,Delhi,Aryan Books International.
4. Bahuguna, S. (1983). Walking with the Chipko message. Silyara: Chipko Information Centre.
5. Bhatt, C.P. (1980). Eco- system of the central Himalayas and Chipko movement: Determination of hill people to save their forests. Gopeshwar: Dashauli Gram Swarajya Sangh. Datta, S.K. (ed.) (1987). Management plan for the Chakrata Forest Division, 1987–88 to 1996–97. Nainital: Working Plans Circle, Uttar Pradesh.
6. Guha, R. (2009). The unquiet woods: Ecological change and peasant resistance in the Himalaya. Ranikhet: Permanent Black.
7. Ishizaka, S. (2007). Leader- follower relations in the foot marches in Gandhian environmental movement in India. Afrasia Working Paper, 20, 1–17
8. Ishizaka, S. (2011). Gendai Indo no kankyou shisou to kankyou undou: Gandi syugi to 'tsunagari no seiji' (Environmental movement in India: Gandhism and 'connective politics'). Kyoto: Showado.
9. Joshi, R.C. (1987). Introduction. In S.K. Datta (ed.), Management plan for the Chakrata Forest Division, 1987–88 to 1996–97 (pp. 1–2). Nainital: Working Plans Circle, U.P.
10. Kohli, A. (2012). Poverty amid plenty in the new India. Cambridge: Cambridge University Press.
11. Kumar, A. (2010). The making of a small state: Populist social mobilisation and the Hindi press in the Uttarakhand movement. Ranikhet: Permanent Black.
12. Kumar, P. (2000). The Uttarakhand movement: Construction of a regional identity. New Delhi: Kanishka Publishers.

13. Linkenbach, A. (2005). Nature and politics: The case of Uttarakhand, North India. In G. Cederlöf and K. Sivaramakrishnan (eds), Ecological nationalisms: Nature, livelihoods, and identities in South Asia (pp. 151–169). Delhi: Permanent Black.
14. Linkenbach, A. (2007). Forest futures: global representations and ground realities in the Himalayas. London: Seagull Books.
15. Mawdsley, E. (1998). After Chipko: From environment to region in Uttaranchal. The Journal of Peasant Studies, 25, 4, 36–54.
16. Mishra, A. and Tripathi, S. (1978). Chipko movement: Uttarakhand women are bid to save forest wealth. New Delhi: Gandhi Peace Foundation.
17. Misra, D.N. (1983). Forest statistics, Uttar Pradesh, 1983. Lucknow: Forest Department, Uttar Pradesh.
18. Nagamine, R. (2003). Dokuritsu igo no shinrin seisaku (Forest policy after independence). In H. Yanagisawa (ed.), Kaihatsu to kankyo (Development and environment), Gendai minami ajia (Contemporary South Asia) 4 (pp. 118–133). Tokyo: University of Tokyo Press. Pathak, A. (1994). Contested domains: The state, peasants and forests in contemporary India. New Delhi: Sage. Pathak,
19. S. (2000). Beyond an autonomous state: Background and preliminary analysis of Uttarakhand movement. In Indian History Congress (ed.), Proceedings of the Indian history congress: Diamond jubilee (60th) session, Calicut, 1999 (pp. 893–907). Aligarh: Indian History Congress.
20. Poffenberger, M. and McGean, B. (eds) (1996). Village voices, forest choices: Joint forest management in India. New Delhi: Oxford University Press.
21. Poldane, M. (1987). Chipko movement: An overview. In Y.P.S. Pangtey and S.C. Joshi (eds), Western Himalaya vol. II: Problems and development (pp. 702–717). Nainital: Gyanodaya
22. Prakashan. Rangan, H. (1996). From Chipko to Uttaranchal: Development, environment, and social protests in the Garhwal Himalayas, India. In R. Peet and M. Watts (eds), Liberation ecologies: Environment, development, social movements (pp. 205–226). London: Routledge. Rangan,
23. H. (2000). Of myths and movements: Rewriting Chipko into Himalayan history. New Delhi: Oxford University Press.
24. Rawat, R.B.S. (2012). Uttarakhand forest statistics, 2011–12. Dehradun: Forest Department, Uttarakhand.
25. Shinya, Ishizaka .Re- evaluating the Chipko (forest protection) movement The emergence of the vernacular public arena in the Uttarakhand
26. Shiva,Vandana,1988,Staying Alive: Women, Ecology and Development